Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. 19, Issue No. 3, April-2022, ISSN 2230-7540

शिक्षा के व्यवसायीकरण का प्रभाव

डॉ० एम० ए० खान[1]*, डॉ० आबिदा खातून[2]

[1] एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञानं/ प्राचार्य, कृष्णा इंस्टिट्यूट ऑफ़ साइंस, बिजनौर।

[2] असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञानं विभाग स्नातकोत्तर महिला महाविद्यालय, बिजनौर।

सारांश - शिक्षा के क्षेत्र में निजी क्षेत्र के योगदान को नज़र अंदाज़ नहीं किया जा सकता है। शिक्षा के प्रचार प्रसार में निजी क्षेत्र के सहयोगियों ने सदैव ही बढ़ चढ़कर योगदान दिया है। देश में बड़ी बड़ी शिक्षण संस्थाएं इसका उदाहरण हैं। आर्थिक उदारीकरण की नीतियों के प्रभाव के कारण अब निजीकरण का अर्थ व्यवसायीकरण हो गया है। इस व्यवसायीकरण के कारण शिक्षा के आम लोगों की पहुँच से दूर होने का ख़तरा बढ़ गया है जो एक एक लोकतान्त्रिक गणराज्य के नागरिकों के लिए चिंता का विषय है। व्यवसायीकरण ने शिक्षा को "दान" के विषय के स्थान पर "दाम" का विषय बना दिया है। व्यवसायीकरण के कारण शिक्षा का विस्तार तो अवश्य हुआ है परन्तु शिक्षा की गुणवत्ता का विषय गौण हो गया है। प्रस्तुत शोध पत्र में नई शिक्षा नीति के सन्दर्भ में निजी शिक्षण संस्थाओं भूमिका तथा शिक्षा के प्रसार के साथ गुणवत्ता की समस्या का अध्ययन किया जायेगा।

कुँजी - व्यवसायीकरण , निजीकरण , आर्थिक उदारीकरण, संसाधन, शिक्षा का प्रसार।

----------X----------

राज्य जीवन के लिए अस्तित्व में आया तथा सद्जीवन के लिए उसका अस्तित्व बना हुआ है। राज्य की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अरस्तु के द्वारा कहा गया यह कथन राज्य के महत्व को प्रदर्शित करता है। प्रारम्भ में राज्य का कार्य केवल नागरिकों के जीवन की रक्षा मात्र था। आवश्यकतानुसार राज्य का कार्य क्षेत्र बढ़ता गया। वर्तमान समय में जीवन के लगभग प्रत्येक क्षेत्र में राज्य का दख़ल है। सन 1960 के बाद से राज्यों में सीमित संसाधनो तथा कठिन अर्थोपाय की स्थिति की दुहाई देकर कार्यक्षेत्र को सीमित करने की प्रवृत्ति ने जन्म लिया है। इस प्रवृत्ति का निरन्तर विस्तार हो रहा है। परिणामस्वरूप राज्य के मौलिक दायित्व शिक्षा व स्वास्थ्य जैसे महत्वपूर्ण विषयों को भी निजी क्षेत्रों के हवाले किया जा रहा है। निजीकरण से इन सेवाओं का व्यवसायीकरण बढ़ रहा है। व्यवसायीकरण के कारण इन सेवाओं का विस्तार तो अवश्य हो रहा है परन्तु इनकी गुणवत्ता तथा आम नागरिकों तक इनकी पहुँच जटिल होती जा रही है।

नई शिक्षा नीति का मसौदा देश के समक्ष प्रस्तुत है। जनसंख्या के सन्दर्भ विश्व की दूसरी सबसे बड़ी तथा कुल युवा आबादी के लिहाज़ से विश्व में प्रथम स्थान पर होने के कारण भारत के लिये अपनी शिक्षा नीति में सुधार किया जाना समीचीन भी है। देश में मैकाले द्वारा लागु की गई शिक्षा पद्धति तथा स्वतंत्र भारत में जारी रहने वाली शिक्षा पद्धति पर प्रश्न चिन्ह लगते रहे है। वास्तव में बदलते हुए वैश्विक स्वरुप के परिप्रेक्ष में आज शिक्षा का विमर्श बदल गया है। प्राचीन समय में जहाँ ज्ञान बालक को चरित्रवान ,गुणवान तथा संस्कारी बनाने तक सीमित था ,वर्तमान समय में वह आजीविका प्राप्ति का मुख्य साधन बन गया है। भूमण्डलीकरण ने इस समस्या को और भी अधिक बना दिया है। आज वैश्विक चुनौतियों का सामना करने के लिये हमें अपनी शिक्षा व्यवस्था को न केवल विश्वस्तरीय बनाना होगा वरन शिक्षा व्यवस्था को रोज़गार परक व गुणवत्तापूर्ण भी बनाना होगा। नवीन शिक्षा नीति के प्रारूप को इसी सन्दर्भ में देखा जाना चाहिये। कस्तूरीरंगन समिति द्वारा प्रस्तुत नई शिक्षा नीति का प्रारूप विभिन्न क्षेत्रों से प्राप्त सुझावों तथा माँगों का संकलन मात्र प्रतीत होता है। इस सम्पूर्ण प्रारूप में सरकार की नीति व उद्देश्य स्पष्ट नहीं है। उदाहरण के लिये भारत एक लोककल्याणकारी राज्य है यहाँ पर जनसंख्या का एक बड़ा भाग दो वक्त की रोटी जुटा पाने में असमर्थ है ,स्वच्छ पेयजल ,स्वास्थ्य, आवास आदि मूलभूत अवश्यकताओं को पूरा कर पाना स्वप्न जैसा है ऐसे में शिक्षा का निजीकरण तथा निजीकरण की आड़ में व्यवसायीकरण किया जाना क्या उचित है ?

देश की वर्तमान शिक्षा व्यवस्था का अनुमान मानव संसाधन विकास मन्त्रालय की ताज़ा रिपोर्ट से लगाया जा सकता है

www.ignited.in

जिसके अनुसार वर्ष 2017 -18 में प्राथमिक से लेकर उच्च शिक्षा तक के विभिन्न स्तरों पर तीन करोड़ साठ लाख बालक बालिकाएं अध्यनरत थे। मोटे अनुमान के अनुसार 90% शिक्षा निजी क्षेत्र के सहयोगियों के द्वारा संचालित की जा रही है। मिश्रित अर्थव्यवस्था में निजी क्षेत्र के सहयोग को सन्देह की दृष्टि से देखा जाना ठीक नहीं है। शिक्षा जैसे पवित्र तथा पुनीत कार्य में दान से जुटाई गई धनराशि का उपयोग किया जा सकता है। परन्तु निजी सहयोग की आड़ में शिक्षा का व्यवसायीकरण किया जाना कदापि उचित नहीं है। शिक्षा के व्यवसायीकरण से शिक्षा महंगी होकर साधन संपन्न लोगों तक सीमित होकर रह जायेगी तथा वह आबादी जो आज भी रोटी ,कपड़ा व मकान जैसी मूलभूत सुविधाओं के लिये संघर्ष कर रही है वह शिक्षा प्राप्त करने से दूर हो जायेगी।

भारतीय संविधान की प्रस्तावना में स्पष्ट उल्लेख है कि भारत एक "लोकतान्त्रिक समाजवादी गणराज्य" है। अर्थात मूलभूत सविधाओं जैसे - शिक्षा, स्वास्थ्य ,आवास आदि से किसी को भी वंचित किया जाना संविधान की भावना के विपरीत होगा। विगत 25 वर्षों शिक्षा क्षेत्र के विस्तार से साथ ही इसका व्यवसायीकरण होने लगा है। जनसंख्या के अनुपात में शिक्षा क्षेत्र के विस्तार की आवशयकता तो वास्तव में थी परन्तु तीव्र व्यावसायिक लाभ के चलते क्षेत्र का विकास इतना अधिक गति से हुआ कि गुणवत्ता का तत्व ग़ायब हो गया जिसको कदापि उचित नहीं ठहराया जा सकता है।अब सरकारें मात्र मान्यता प्रदान करने तक सीमित हैं तथा शिक्षा विभाग के अधिकारी धनउगाही में व्यस्त हैं। जिस प्राइमरी स्कूल को मान्यता प्रदान की जाती है वहां पर मूलभूत सुविधाएँ जिनमें शिक्षक का होना अपरिहार्य है उसकी सुध लेने वाला कोई नहीं है। कौन नहीं जानता है की इन तथाकथित स्कूलों में आज भी अध्यापन कार्य हेतु 400 -500 रूपये प्रतिमाह पर शिक्षक /शिक्षिकाओं की नियुक्ति की जाती है। स्वाभाविक रूप से योग्य शिक्षक इतने वेतन पर अपनी सेवायें देने में असमर्थ रहेगा। प्राथमिक ही नहीं उच्च शिक्षा के स्तर तक यही हाल है।

केन्द्रीय व राज्य विश्वविद्यालयों से लेकर राजकीय तथा सहायता प्राप्त महाविद्यालयों तक में वर्षो से रिक्त पदों पर भर्ती नहीं की गयी है निजी क्षेत्र के असहायता प्राप्त स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में तो मात्र काग़ज़ों तथा फाइलों में नियुक्त शिक्षकों से ही अध्यापन कार्य करा लिया जाता हैं।यही नहीं ये काग़ज़ी शिक्षक एक साथ कई महाविद्यालयों में शिक्षण कार्य करते हुए दर्शाये गये हैं। डॉ० भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय ,आगरा इसका जीता जागता उदाहरण हैं जहाँ जाँच किये जाने पर पाया गया कि एक बी० एड० शिक्षक एक ही समय में एक ही विश्वविद्यालय से सम्बद्ध 47 महाविद्यालयों में अध्यापन कार्य को सम्पादित कर रहा है। यह योग्य शिक्षक अन्य विश्वविद्यालयों में भी अपनी सेवाये दे रहा हो सकता है।शिक्षक ही नहीं कक्षा कक्ष ,पुस्तकालय ,प्रयोगशाला ,क्रीड़ास्थल आदि मानकों को तक पर रख दिया गया है।परीक्षाओं में खुलेआम नक़ल करायी जाती है। डिवीज़न लाने या नम्बर बढ़वाने की क़ीमत वसूल की जाती है। कुल मिलाकर विद्यालय तथा महाविद्यालय मात्र पंजीकरण केन्द्र बनकर रह गये हैं। इस प्रकार का वातावरण तैयार किया गया है कि छात्र विद्यालय आना आवशयक नहीं समझता है। सोने पर सुहागा यह कि इस प्रकार की शिकायतों को रद्दी की टोकरी में डाल दिया जाता है।शासकीय उदासीनता की बात की जाये तो देखने में आता है कि पाठ्यक्रमों का शुल्क निर्धारित करने में उसकी कोई रुचि नहीं है जिस कारण से शिक्षण संस्थायें मनमाना शुल्क वसूल करती हैं।

शिक्षण संस्थाओं में नियुक्त प्राचार्य तथा शिक्षकों के विधिवत चयन तथा अनुमोदन के बावजूद इनके लिये न तो कोई सेवानियमावली बनाई गयी और न ही इनका वेतन निर्धारित किया गया। ऐसे में ये शिक्षक भयंकर शोषण का शिकार हैं तथा मनरेगा मज़दूर से भी बदतर जीवन व्यतीत करने को मजबूर हैं। ऐसे प्राचार्य अथवा शिक्षक से गुणवत्तापरक शिक्षा दिये जाने की अपेक्षा करना बेमानी होगा। प्रश्न उठता है कि इन समस्याओं का समाधान करना क्या सरकार की ज़िम्मेदारी नहीं है ? क्या इस विषय को कस्तूरीरंगन समिति ने अपने प्रारूप में स्थान देना उचित नहीं समझा ? स्वामीनाथन समिति की रिपोर्ट में राजनितिक दलों के प्रभावशाली नेताओं गठजोड़ तथा व्यापक भ्रष्टाचार को इसका ज़िम्मेदार ठहराया गया है। इस बात से सहज ही अन्दाज़ा लगाया जा सकता है कि शिक्षा की गुणवत्ता हमारी प्राथमिकता सूची में कौन से स्थान पर है।

सरकार की नीति तथा नीयत दोनों ही अस्पष्ट है। नई शिक्षा नीति में सर्वप्रथम इसको स्पष्ट किया जाना अति आवश्यक है। एक ओर 6 -14 वर्ष तक के बालक-बालिकाओं के लिए अनिवार्य शिक्षा के उद्देश्य से संविधान के अनुच्छेद 21-A का प्रावधान किया गया है। प्रोत्साहन के लिये बहुत से कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं तथा निर्धन छात्र - छात्राओं के लिये शुल्क प्रतिपूर्ति तथा छात्रवृत्ति आदि पर बजट का एक बड़ा भाग खर्च क्र रही है। वहीँ दूसरी ओर शिक्षा को निजी क्षेत्र के सहयोगियों के हाथों में सौंप कर शिक्षा के स्तर तथा गुणवत्ता के साथ समझौता करनें पर आमादा है। शिक्षा क्षेत्र के बजट के सम्बन्ध में 1952 में जी० डी० पी० का 6 % रखे जाने की आवशयकता समझी गयी थी ,परन्तु आज तक भी इस धनराशि को शिक्षा

बजट के आवंटित नहीं किया जा सका है। वर्तमान सरकार ने तो इस बजट को मात्र 2.79 तक ही सीमित रखा। कमाल की बात है कि इस धनराशि को भी पूरा खर्च करने में सरकार विफल रही। परिणामस्वरूप टाटा रिसर्च इंस्टिट्यूट जैसे देश के अग्रणी शोध संस्थानों में अपने कर्मचारियों को वेतन दिये जाने की समस्या का सामना करना पड़ा।

नई शिक्षा नीति के प्रारूप में सबसे अधिक बल शिक्षण संस्थाओं को स्वायत्त बनाने पर दिया गया है। अधिकतम लाभ प्राप्त करने में शिक्षण संस्थाओं के लिये उनकी स्वायतता शायद सर्वाधिक हितकारी हो। परन्तु यहाँ पर यह निर्णय अवश्य ही लेना होगा कि आखिरकार हम अपने राष्ट्र को किस दिशा में ले जाना चाहते हैं। क्या मात्र धनोपार्जन ही हमारे राष्ट्र को सशक्त बना सकता है ? अथवा राष्ट्र को सशक्त बनाने के लिये हमको मूल्य आधारित गुणवत्तापरक शिक्षा की आवशयकता होगी ? वास्तव में भारत को एक राष्ट्र के रूप में अपने गौरवशाली अतीत को नहीं भूलना चाहिये। इस समाज को सदैव ही मूल्य आधारित गुणवत्तापरक शिक्षा की आवशयकता थी और आज भी है। इसके लिये सरकार नई शिक्षा नीति में आवशयक सुधारों के साथ साथ शिक्षा को व्यवसायीकरण के प्रभाव से मुक्त रखने ,निजी क्षेत्र के शिक्षण संस्थानों पर प्रभावी नियन्त्रण ,निजी शिक्षण संस्थाओं के संचालन में पारदर्शिता इत्यादि की व्यवस्था करे। इसके लिये सरकार संसद में "निजी शिक्षण संस्थान नियन्त्रण एवं नियमन विधेयक" द्वारा निजी क्षेत्र की शिक्षण संस्थाओं में व्याप्त बहुत सी समस्याओं का समाधान कर सकती है।

सन्दर्भ सूत्र

1. शर्मा (2016), अनुसंधान एवं अध्यापक शिक्षा के मुद्दे : - आर० लाल बुक डिपो. मेरठ।
2. शिवपाल सिंह (2016). समकालीन भारत एवं शिक्षालायल बुक्स, मेरठ।
3. राकेश कुमार केशरी (2016). समकालीन भारत एवं शिक्षा आर० लाल बुक डिपी. मेरठ। 1. डिपो, मेरठ।
4. www.essaysinhindi.com>education>
5. bayfazkachandigam.blogspot.com 2
6. moo.m.wikipedia.org>wikis
7. paprashantechguru.wordpress.com>

Corresponding Author

डॉ० एम० ए० खान*

एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञानं/ प्राचार्य, कृष्णा इंस्टिट्यूट ऑफ़ साइंस, बिजनौर।